

राजस्थान उच्च न्यायालय
जयपुर पीठ

एस.बी. आपराधिक अपील संख्या 516/1991

शंकर लाल पुत्र बालू राम, निवासी तिलोरा, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

-----अपीलकर्ता

बनाम

राजस्थान राज्य

-----प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए	:	श्री ए.के.गुप्ता-वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री रिनेश गुप्ता, श्री सौरभ प्रताप सिंह, श्री गौरव शर्मा और श्री सरवत आलम
प्रतिवादी के लिए	:	श्री मानवेंद्र सिंह-लोक अभियोजक

न्यायमूर्ति अनूप कुमार धंड
निर्णय

आरक्षित दिनांक	04/11/2024
घोषित दिनांक	29/11/2024
रिपोर्ट करने योग्य	

विवेचन की सुविधा के लिए, इस निर्णय को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है: -

अनुक्रमणिका

(1) मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि.....	2
(2) अपीलकर्ता की ओर से निवेदन.....	3
(3) लोक अभियोजक द्वारा निवेदन.....	5
(4) विश्लेषण, चर्चा एवं तर्क.....	6

(5) निष्कर्ष.....35

1. यह अपील विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण मामले, जयपुर द्वारा विशेष मामला संख्या 02/1987 में पारित दिनांक 04.11.1991 के चुनौतीपूर्ण निर्णय के विरुद्ध दायर की गई है। इस निर्णय द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता (जिसे आगे 'अपीलकर्ता' कहा गया है) को भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में, 'आईपीसी') की धारा 161 (अब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 द्वारा निरस्त) के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है और 2000/- रुपये के जुर्माने के साथ 12 महीने के कठोर कारावास (संक्षेप में, 'क.का.') की सजा सुनाई गई है, तथा जुर्माने का भुगतान न करने पर छह महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा भुगतनी होगी। साथ ही, उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (जिसे आगे '1947 का अधिनियम' कहा गया है) (अब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 द्वारा निरस्त) की धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है और 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ ढाई साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, तथा इसका भुगतान न करने पर छह महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा भुगतनी होगी।

मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि परिवादी पी18-घीसालाल द्वारा 12.06.1986 को भ्रष्टाचार निरोधक विभाग, अजमेर (संक्षेप में, "एसीडी") में एक शिकायत (प्रदर्श पी8) दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि केकड़ी में स्थित 64 बीघा भूमि उनके दिवंगत पिता-हरदेव जाट के नाम पर थी, और उनकी मृत्यु के बाद, नामांतरण कार्यवाही में, उक्त भूमि उनके नाम पर दर्ज होनी थी, लेकिन उनके रिश्तेदारों ने उप-मंडल मजिस्ट्रेट, केकड़ी (संक्षेप में, "एसडीएम") के न्यायालय में विभाजन का वाद दायर किया, जिसमें उनके बीच एक समझौता हुआ और वाद उनके पक्ष में वापस ले लिया गया। जब संवत् वर्ष-2041 की जमाबंदी तैयार की गई, तो उक्त भूमि की प्रविष्टि उनके दूर के रिश्तेदार चाचा-हरनाथ @ धन्ना जाट के नाम पर की गई, जिनकी कोई संतान नहीं थी, तत्पश्चात, उन्होंने राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को सही करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उनके पक्ष में पारित निर्णय की प्रति और संबंधित

जमाबंदी संलग्न थी, लेकिन अपीलकर्ता ने 1000/- रुपये की राशि की मांग की और वह अपीलकर्ता को रिश्त नही देना चाहते थे।

3. इस रिपोर्ट पर, 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) के तहत अपराध के लिए अपराध संख्या 126/1986 दर्ज किया गया। तत्पश्चात, जांच की गई और जांच पूरी होने के बाद, अपीलकर्ता के विरुद्ध 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात, अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप तय किए गए, जिसे अपीलकर्ता ने अस्वीकार कर दिया और परीक्षण का दावा किया और तत्पश्चात अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 11 साक्षियों की जांच की और कुछ दस्तावेजों को प्रदर्शित किया। तत्पश्चात, अपीलकर्ता के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उसने घटना में अपनी भागीदारी से इनकार किया और प्रस्तुत किया कि उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है और अपने बचाव में, डी.डब्ल्यू.-1 राम किशन का बयान दर्ज किया गया।

4. दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद, विद्वान परीक्षण न्यायाधीश ने दिनांक 04.11.1991 के चुनौतीपूर्ण निर्णय द्वारा अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

5. चुनौतीपूर्ण निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अपीलकर्ता ने इस अपील को दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

अपीलकर्ता की ओर से निवेदन

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता-श्री ए.के.गुप्ता-वरिष्ठ अधिवक्ता ने श्री रिनेश गुप्ता की सहायता से प्रस्तुत किया कि परिवादी का कोई भी कार्य अपीलकर्ता के पास लंबित नहीं था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, भूमि हरनाथ उर्फ धन्ना जाट के नाम पर थी, जिनकी कोई संतान नहीं थी और अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, परिवादी के पक्ष में राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को सही करने के लिए अपीलकर्ता द्वारा मौद्रिक मांग उठाई गई थी। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी नहीं था और प्रविष्टियों को सही करने के

उद्देश्य से, परिवादी को अपने पक्ष में एक डिक्री प्राप्त करनी थी। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चुनौतीपूर्ण निर्णय विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा केवल परिवादी पी.डब्ल्यू.-1-घीसालाल के बयानों के आधार पर पारित किया गया है, और अपीलकर्ता के विरुद्ध अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए कोई अन्य स्वतंत्र साक्षी नहीं थे। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता के कहने पर कथित बरामदगी संदिग्ध प्रतीत होती है क्योंकि स्वतंत्र साक्षियों की उपस्थिति में वस्तुएं जब्त नहीं की गई थीं और अभियोजन पक्ष द्वारा यह तथ्य बताते हुए कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि मुहर बरकरार रखी गई थी और इस संबंध में मालखाना रजिस्टर प्रस्तुत किया गया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि महत्वपूर्ण साक्ष्य, एफएसएल रिपोर्ट का संकेत देते हुए, अपीलकर्ता को तब नहीं बताया गया था जब उसका बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किया गया था, इसलिए, इन तथ्यों और परिस्थितियों में, पूरा परीक्षण दूषित हो गया है। अपने तर्कों के समर्थन में, अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

- (1) बी. जयराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, रिपोर्टेड जेटी 2014(7) एससी 381,
- (2) ए. सुबैर बनाम केरल राज्य, रिपोर्टेड जेटी 2009(8) एससी 415,
- (3) धर्मेंद्र बनाम राजस्थान राज्य (एस.बी. आपराधिक अपील संख्या 674/2001) दिनांक 25.05.2022 को तय किया गया,
- (4) बाल कृष्ण सयाल बनाम पंजाब राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 1987 एससी 689,
- (5) बनारसी दास बनाम हरियाणा राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 2010 एससी 1589,
- (6) शेख मकसूद बनाम महाराष्ट्र राज्य, रिपोर्टेड 2009 एआईआर एससीडब्ल्यू 4308,
- (7) सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 2013 एससी 3817,
- (8) महमूद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 1976 एससी 69,
- (9) मोहम्मद अमन, बाबू खान और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 1997 एससी 2960,
- (10). रतन लाल बनाम राजस्थान राज्य, रिपोर्टेड 2001(1) आरसीसी 70 और

(11) पनालाल दामोदर राठी बनाम महाराष्ट्र राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 1979 एससी 1191।

लोक अभियोजक द्वारा निवेदन

7. इसके विपरीत, विद्वान लोक अभियोजक ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता के कार्यालय में छापा पड़ने पर परिवादी का कार्य अपीलकर्ता के पास लंबित था और उसे रंगे हाथों पकड़ा गया था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब अपीलकर्ता के कहने पर प्रश्नगत राशि की बरामदगी की गई और जब उसके हाथ धोए गए, तो पानी का रंग बदल गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन परिस्थितियों में, अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता के विरुद्ध अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है, इसलिए, विद्वान परीक्षण न्यायाधीश ने अपीलकर्ता के विरुद्ध रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर एक तर्कसंगत और सुसंगत निर्णय पारित किया है, जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार, वर्तमान अपील खारिज किए जाने योग्य है।

8. बार में किए गए निवेदन सुने और उन पर विचार किया गया तथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।[सीआरएलए-516/1991]

विश्लेषण, चर्चा एवं तर्क

9. मामले पर विचार करने से पहले, यह न्यायालय 1947 के अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान को नोट करना उचित समझता है, जो इस प्रकार है: -

"5 आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में आपराधिक कदाचार:-

1. एक लोक सेवक आपराधिक कदाचार का अपराध करने वाला कहा जाता है: -

(क) यदि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 161 में उल्लिखित उद्देश्य या इनाम के रूप में किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई परितोषण (कानूनी पारिश्रमिक के अलावा) आदतन स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है; या

(ख) यदि वह आदतन स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु बिना प्रतिफल के या ऐसे प्रतिफल के लिए प्राप्त करने का प्रयास करता है जिसे वह

अपर्याप्त जानता है, ऐसे किसी व्यक्ति से जिसे वह जानता है कि वह उसके द्वारा किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्यवाही या व्यवसाय में संबंधित रहा है; या संबंधित है, या संबंधित होने की संभावना है, या जिसका उसके या किसी ऐसे लोक सेवक के आधिकारिक कार्यों से कोई संबंध है जिसके वह अधीनस्थ है, या ऐसे किसी व्यक्ति से जिसे वह जानता है कि वह संबंधित व्यक्ति में रुचि रखता है या उससे संबंधित है, या

(ग) यदि वह बेईमानी से या कपटपूर्ण तरीके से अपने स्वयं के उपयोग के लिए किसी संपत्ति का दुरुपयोग करता है या अन्यथा परिवर्तित करता है जो उसे लोक सेवक के रूप में सौंपी गई थी या उसके नियंत्रण में थी या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देता है, या

(घ) यदि वह, भ्रष्ट या अवैध साधनों से या लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या मौद्रिक लाभ प्राप्त करता है, या

(ङ) यदि वह या उसकी ओर से कोई व्यक्ति अपने पद की अवधि के दौरान किसी भी समय, ऐसी मौद्रिक संसाधनों या संपत्ति के कब्जे में है या रहा है, जिसके लिए लोक सेवक संतोषजनक ढंग से हिसाब नहीं दे सकता, जो उसकी ज्ञात आय के स्रोतों के अनुपातहीन है।

(2) कोई भी लोक सेवक, जो आपराधिक कदाचार करता है, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा जिसकी अवधि एक वर्ष से कम नहीं होगी लेकिन सात वर्ष तक बढ़ सकती है और वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा:

बशर्ते कि न्यायालय, लिखित रूप में दर्ज किए गए किसी विशेष कारण से, एक वर्ष से कम कारावास की सजा दे सकता है।

(3) जो कोई आदतन करता है: -

(i) भारतीय दंड संहिता की धारा 162 या धारा 163 के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 165 ए के तहत दंडनीय अपराध, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा जिसकी अवधि एक वर्ष से कम नहीं होगी लेकिन सात वर्ष तक बढ़ सकती है और वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा: बशर्ते कि न्यायालय, लिखित रूप में दर्ज किए गए किसी विशेष कारण से, एक वर्ष से कम कारावास की सजा दे सकता है।

(3 ए) जो कोई उप-धारा (1) के खंड (ग) या खंड (घ) में संदर्भित अपराध करने का प्रयास करता है, उसे कारावास से दंडित किया

जाएगा जिसकी अवधि तीन वर्ष तक बढ़ सकती है, या जुर्माने से, या दोनों से।

(3 बी) जहां उप-धारा (2) या उप-धारा (3) के तहत जुर्माना लगाया जाता है, तो न्यायालय जुर्माने की राशि तय करते समय, यदि कोई हो, उस राशि या संपत्ति के मूल्य को ध्यान में रखेगा, जिसे अभियुक्त व्यक्ति ने अपराध करके प्राप्त किया है या जहां दोषसिद्धि उप-धारा (1) के खंड (ड) में संदर्भित अपराध के लिए है, तो उस खंड में संदर्भित मौद्रिक संसाधनों या संपत्ति को ध्यान में रखेगा जिसके लिए अभियुक्त व्यक्ति संतोषजनक ढंग से हिसाब देने में असमर्थ है।

(4) इस धारा के प्रावधान, उस समय लागू किसी अन्य कानून के अतिरिक्त होंगे, और उसके अल्पीकरण में नहीं होंगे, और इसमें निहित कोई भी बात किसी भी लोक सेवक को किसी भी कार्यवाही से छूट नहीं देगी जो इस धारा के अलावा उसके विरुद्ध स्थापित की जा सकती है।"

धारा 5 में कहा गया है कि कोई भी लोक सेवक जो किसी व्यक्ति से कोई अनुचित लाभ स्वीकार करता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है, जिसका इरादा सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करना या करवाना या ऐसे पालन से विरत रहना है, चाहे वह स्वयं द्वारा या किसी अन्य लोक सेवक द्वारा हो, उसे आपराधिक कदाचार का अपराध करने वाला कहा जाता है। इसलिए, धारा 5 का मूल सार्वजनिक कर्तव्य के पालन के लिए या ऐसे पालन से विरत रहने के लिए मौद्रिक लाभ या मूल्यवान वस्तुओं आदि की मांग और स्वीकृति है।

इसी तरह, धारा 161 आईपीसी एक आधिकारिक कार्य के संबंध में कानूनी पारिश्रमिक के अलावा एक लोक सेवक द्वारा परितोषण लेने के अपराध से संबंधित है।

10. अपीलकर्ता के विरुद्ध उपरोक्त अपराध को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 11 साक्षियों की जांच की है।

10.1 पी.डब्ल्यू.-1 - घीसालाल परिवादी है, जिसने कहा कि उसकी 64 बीघा जमीन केकड़ी में स्थित है। यह जमीन मूल रूप से हरदेव पुत्र हुकमा और बाबू पुत्र बेडा के नाम पर थी जिसे बाद में हरनाथ पुत्र धन्ना जाट को हस्तांतरित कर दिया गया था। यह जमीन गलती से गलत नाम पर हस्तांतरित हो गई थी, इसलिए, उप-मंडल मजिस्ट्रेट (एसडीएम) के न्यायालय में एक वाद दायर किया गया था, जहां पक्षों के बीच एक

समझौता हुआ था। उसके बाद, वह अपने नाम पर रिकॉर्ड में प्रविष्टि और जमाबंदी में खातेदारी अधिकारों की प्रविष्टि को सही करने के लिए अमीन के कार्यालय गया। उसने इस संबंध में दस्तावेजों (प्रदर्श पी2 से पी7) के साथ एक आवेदन (प्रदर्श पी1) प्रस्तुत किया, लेकिन अपीलकर्ता ने उक्त रिकॉर्ड में सुधार करने के लिए 5000/- रुपये की रिश्त की मांग की। मोलभाव के बाद, राशि घटाकर 4000/- रुपये कर दी गई। तब, अपीलकर्ता ने कहा कि वह पहले 1000/- रुपये लेगा और फिर अगले दिन 2000/- रुपये लेगा और शेष 1000/- रुपये काम पूरा होने के बाद लेगा। उसने आगे कहा कि वह रिश्त नहीं देना चाहता था, इसलिए वह भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो गया और अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (संक्षेप में, 'एएसपी') के पास एक शिकायत प्रदर्श पी8 दर्ज कराई और, तत्पश्चात, जाल कार्यवाही की व्यवस्था की गई, जिसमें अपीलकर्ता को 1000/- रुपये की रिश्त के साथ रंगे हाथों पकड़ा गया।

10.2. पी.डब्ल्यू.2- के.एन. शर्मा ने कहा कि वह सार्वजनिक निर्माण विभाग, अजमेर (संक्षेप में, 'पीडब्ल्यूडी') में सहायक अभियंता के रूप में कार्यरत थे। 12.06.1986 को, उनके कार्यकारी अभियंता ने उन्हें भ्रष्टाचार निरोधक विभाग जाने का निर्देश दिया ताकि अपीलकर्ता द्वारा परिवादी घीसालाल से रिश्त की मांग की घटना को सत्यापित किया जा सके। तब, उनकी उपस्थिति में जाल की नकली कार्यवाही की गई।

10.3 पी.डब्ल्यू.3 - सागरमल ने कहा कि वह पुलिस स्टेशन, अजमेर में कांस्टेबल के पद पर तैनात थे। वह एफआईआर संख्या 126/84 से संबंधित तीन सीलबंद बोलतें पुलिस स्टेशन के मालखाना में उचित स्थिति में लाए। इसी तरह, पी.डब्ल्यू.4 - मालूराम ने कहा है कि अपीलकर्ता को रंगे हाथों पकड़ने के लिए पूरी जाल कार्यवाही उनकी उपस्थिति में व्यवस्थित की गई थी और उन्होंने परिवादी से अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई मांग को सत्यापित किया था।

10.4 पी.डब्ल्यू.5-ए.पी. सिंह ने कहा कि वह सिंचाई विभाग, अजमेर में सहायक अभियंता के पद पर तैनात थे, जिनकी उपस्थिति में अन्य सदस्यों के साथ, जाल कार्यवाही करके अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई मांग का सत्यापन किया गया था।

10.5 पी.डब्ल्यू.6 - जय सिंह ने प्रस्तुत किया कि उसने 1000/- रुपये के नोटों पर फिनोलफथेलिन पाउडर लगाया और वही परिवादी को दिया। तत्पश्चात, जाल पार्टी जाल कार्यवाही का संचालन करने गई और वह पुलिस स्टेशन में ही रहा।

10.6 पी.डब्ल्यू.7 - साहिबराम ने प्रस्तुत किया कि वह भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो, अजमेर में पुलिस उपाधीक्षक के पद पर तैनात थे। 13.06.1986 को एक जाल अभियान की योजना बनाई गई और उसे संचालित किया गया। परिवादी घीसालाल को मालूराम के साथ रिश्त की मांग के सत्यापन के लिए भेजा गया। तत्पश्चात, परिवादी ने एएसपी को 1000/- रुपये के नोट प्रस्तुत किए और फिर इन नोटों पर फिनोलफथेलिन पाउडर लगाया गया। तब वह परिवादी-घीसालाल, साक्षी ए.पी. सिंह और मालूराम के साथ घटना स्थल पर गया और जाल कार्यवाही की गई और अपीलकर्ता को रंगे हाथों पकड़ा गया। पूरी कार्यवाही की एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई और अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर जमानत पर रिहा कर दिया गया।

10.7 पी.डब्ल्यू.8 - जी.आर. यादव ने कहा कि वह बंदोबस्त आयुक्त के रूप में कार्यरत थे। भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के कार्यालय द्वारा उनके समक्ष एफआईआर संख्या 126/86 प्रस्तुत की गई थी और रिकॉर्ड और दस्तावेजों का अवलोकन करने के बाद, उन्होंने अपीलकर्ता पर अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श पी17) जारी की। उन्होंने स्वीकार किया कि वह अपीलकर्ता को सरकारी सेवा से नियुक्त करने और हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी थे।

10.8 पी.डब्ल्यू.9 - बाबूलाल माली ने प्रस्तुत किया कि परिवादी घीसालाल दो अन्य व्यक्तियों के साथ उनके कार्यालय में आया जहां हेड कांस्टेबल ने फिनोलफथेलिन पाउडर और सोडियम कार्बोनेट पाउडर के उपयोग का प्रदर्शन किया। परिवादी घीसालाल और जाल पार्टी को एएसपी द्वारा अपीलकर्ता को रिश्त की राशि देने का निर्देश दिया गया था। तत्पश्चात, नोटों पर पाउडर लगाया गया और इन सभी नोटों पर हस्ताक्षर किए गए और इन दो व्यक्तियों से साक्षी बनने का अनुरोध किया गया जिस पर वे सहमत हो गए। तत्पश्चात, पूरी जाल कार्यवाही की गई।

10.9. पी.डब्ल्यू.-10 राम पाल एसीबी चेक पोस्ट, अजमेर में तैनात थे जहां परिवादी 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे के आसपास अपीलकर्ता के खिलाफ शिकायत दर्ज

कराने आया था कि उसने उससे रिश्त की मांग की थी। तत्पश्चात, प्रक्रिया का पालन करते हुए और सत्यापन आदि के लिए साक्षियों को बुलाकर पूरी जाल कार्यवाही की गई।

10.10 पी.डब्ल्यू.11 - महेंद्र कुमार गोविंद एसीडी, अजमेर में एसीपी के रूप में नियुक्त थे और वह चेक पोस्ट के प्रभारी थे। परिवादी ने उन्हें रिपोर्ट (प्रदर्श पी8) प्रस्तुत की और उन्होंने अपने एलडीसी मालू राम को परिवादी के साथ पुष्टि और सत्यापन के लिए भेजा। तत्पश्चात, पूरी जाल कार्यवाही की गई और कानून की प्रक्रिया का पालन करते हुए अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया।

11. इन साक्षियों के साक्ष्य पूरे होने के बाद, अपीलकर्ता के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उसने अभियोजन साक्षियों के आरोप से इनकार किया और प्रस्तुत किया कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को सही करने से संबंधित पूरी कार्यवाही 16.06.1985 को बहुत पहले पूरी हो चुकी थी और 12.06.1986 को उसके पास कोई काम लंबित नहीं था। उसने प्रस्तुत किया कि उसके द्वारा कभी कोई मांग नहीं उठाई गई थी, लेकिन उसे इस मामले में उसकी पेंट की जेब में जबरन नोट डालकर झूठा फंसाया गया है और उसने ये नोट अपनी जेब से फेंक दिए।

12. अब इस न्यायालय के विचार के लिए मूल प्रश्न यह है कि क्या परिवादी पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल का कोई काम अपीलकर्ता के पास लंबित था और क्या उसके द्वारा काम पूरा करने के लिए कोई मांग की गई थी या नहीं?

13. परिवादी पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी8) के अनुसार, कुल 64 बीघा भूमि उसके हिस्से में आई थी और वह उसके पिता हरनाथ के नाम पर थी, जिनकी 5-6 साल पहले मृत्यु हो गई थी और उसका नामांतरण उसके नाम पर किया जाना/खोला जाना आवश्यक था, लेकिन उसके रिश्तेदारों ने केकड़ी में उप-मंडल मजिस्ट्रेट के न्यायालय में एक वाद दायर किया, जहां पक्षों के बीच समझौता हुआ और वाद वापस ले लिया गया। लेकिन, गलती से, यह भूमि रिकॉर्ड में उसके चाचा हरनाथ पुत्र धन्ना जाट के नाम पर दर्ज हो गई, जिनकी कोई संतान नहीं थी। अतः, वह जमाबंदी में प्रविष्टि को सही कराने के लिए अपीलकर्ता के कार्यालय गया, लेकिन ऐसी सुधार के लिए उससे 1000/- रुपये की रिश्त की मांग की गई।

14. पूरा विवाद परिवादी द्वारा अमीन, बंदोबस्त विभाग के कार्यालय में अपनी खातेदारी की प्रविष्टियां करने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन (प्रदर्श पी1) के इर्द-गिर्द घूमता है। यहां यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यह आवेदन 12.06.1986 को प्रस्तुत किया गया था और उसी दिन अपीलकर्ता द्वारा भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो में सुबह 10:00 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श पी8 दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता ने उसके नाम पर प्रविष्टियों को सही करने के लिए 1000/- रुपये की रिश्त की मांग की थी।

अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षण न्यायालय के रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं रखा गया है जिससे यह पता चले कि यह आवेदन वास्तव में परिवादी पी.डब्ल्यू.1-घीसालाल द्वारा बंदोबस्त विभाग में प्रस्तुत किया गया था या नहीं, क्योंकि इस आवेदन की किसी भी कार्यालय में कोई प्रस्तुति नहीं है। इस आवेदन पर किसी भी कार्यालय की कोई रसीद नहीं है। इस आवेदन (प्रदर्श पी1) की बरामदगी 13.06.1986 को अपीलकर्ता के कहने पर दिखाई गई है। जब तक यह आवेदन कार्यालय में प्रस्तुत नहीं किया जाता है और जब तक इसे प्रस्तुत नहीं किया जाता है और रिकॉर्ड या रजिस्टर की रसीद में दर्ज नहीं किया जाता है, तब तक इस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है कि परिवादी का कोई काम किसी कार्यालय में किया जाना बाकी था, जिसके लिए अपीलकर्ता द्वारा परिवादी का काम पूरा करने के लिए मांग उठाई गई थी।

15. यह काफी आश्चर्यजनक है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी-8) 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे एसीडी में ही दर्ज की गई थी और खातेदारी में सुधार की मांग वाला आवेदन भी 12.06.1986 को प्रस्तुत किया गया था। कोई भी सरकारी कार्यालय किसी भी कार्य दिवस पर सुबह 10:00 बजे से पहले नहीं खुलता है, तो परिवादी ने यह आवेदन (प्रदर्श पी-8) 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे से पहले कैसे प्रस्तुत किया होगा। अभियोजन पक्ष द्वारा गढ़ी गई कहानी संदिग्ध प्रतीत होती है। अतः, यह स्पष्ट है कि परिवादी पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल का कोई भी काम 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे से पहले अपीलकर्ता के पास लंबित नहीं था, क्योंकि 12.06.1986 को खातेदारी अधिकारों में प्रविष्टियों को सही करने के लिए सुबह 10:00 बजे से पहले ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था।

16. अभियुक्त को 1947 के अधिनियम की धारा 5 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए, उसकी मेज पर कुछ काम लंबित होना चाहिए। चूंकि आवेदन (प्रदर्श पी-1) 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे से पहले अपीलकर्ता की मेज पर प्रस्तुत नहीं किया गया था, अतः, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी-8) 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे दर्ज की गई थी, तब परिवादी का कोई काम अपीलकर्ता के पास लंबित नहीं था, अतः अभियोजन पक्ष इस अपराध के लिए अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए 1947 के अधिनियम की धारा 5 के तत्वों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है, और भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के तहत भी कोई अपराध नहीं बनता है।

17. **इमामसाब मौलासाब तोरागल बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में, आपराधिक अपील संख्या 2555/2013 का निर्णय करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ए. सुबैर** (उपर्युक्त) के मामले में अपने पिछले निर्णय पर विचार किया था, जिसमें यह देखा गया और माना गया था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 13(1)(d)/13(2) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्धि का आदेश प्राप्त करने के लिए, अभियोजन पक्ष को निम्नलिखित तत्वों को स्थापित करना होगा:-

- (i) रिश्त की राशि की मांग और स्वीकृति।
- (ii) जाल के दिन अभियुक्त द्वारा दूषित धन का संचालन (रंग परीक्षण), और
- (iii) जाल की तारीख को परिवादी का काम अभियुक्त के पास लंबित होना चाहिए।

18. **चंद्रेशा बनाम कर्नाटक लोकायुक्त पुलिस कालबुर्गी** के मामले में, 16.02.2022 को आपराधिक अपील संख्या 200105/2015 का निर्णय करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जब जाल की तारीख को परिवादी का काम अभियुक्त के पास लंबित नहीं होता है, तो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(d)/13(2) के तहत दंडनीय अपराध को आकर्षित करने और पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण तत्व बनाए नहीं जा सकते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कर्नाटक बनाम नारायणस्वामी के मामले में आपराधिक अपील संख्या 2506/2012 का निर्णय करते हुए भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया है।

19. इस मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी8) परिवादी द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ 12.06.1986 को सुबह 10:00 बजे दर्ज की गई थी, यानी रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को अपने नाम पर सही करने की मांग वाले आवेदन (प्रदर्श पी1) को प्रस्तुत करने से पहले। अतः, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट उसके खिलाफ दर्ज की गई थी, तब न तो कोई काम और न ही परिवादी का कोई आवेदन अपीलकर्ता के पास लंबित था। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जाल के दिन, परिवादी का कोई काम अपीलकर्ता के पास लंबित नहीं था और इसलिए, उन आरोपों को साबित करने के लिए आवश्यक तत्वों में से एक, जिसके तहत दोषसिद्धि दर्ज की गई है, गायब है। अतः, यह दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है।

20. अब यह न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले की अन्य गंभीर कमजोरियों और परीक्षण न्यायालय द्वारा सामान्य नियम (आपराधिक) 1980 के अनिवार्य प्रावधानों के गैर-अनुपालन को देखने और अवलोकन करने के लिए आगे बढ़ता है।

21. परिवादी पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल के बयान के अनुसार, अपीलकर्ता ने उसके नाम पर खातेदारी प्रविष्टियों को सही करने के आवश्यक काम के लिए 5,000/- रुपये की मांग की थी। फिर, रिश्त की राशि घटाकर 4,000/- रुपये कर दी गई और उसके बाद, अपीलकर्ता ने उससे पहले 1,000/- रुपये और अगले दिन 2,000/- रुपये का भुगतान करने और काम पूरा होने के बाद शेष 1,000/- रुपये का भुगतान करने के लिए कहा। 12.06.1986 को दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी-8) के पहले संस्करण में 5,000/- रुपये या 4,000/- रुपये की मांग का कोई उल्लेख नहीं है। यह कहानी उसके द्वारा बाद के चरण में गढ़ी गई है और परिवादी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी8) में अपीलकर्ता द्वारा 5,000/- रुपये या 4,000/- रुपये की मांग की कहानी क्यों गायब है।

22. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, अपीलकर्ता को रंगे हाथों पकड़ने के लिए जाल कार्यवाही की गई थी। इसके अनुसरण में, प्रत्येक 100/- रुपये के 10 नोटों की एक सूची तैयार की गई थी और इन करेंसी नोटों के नंबर उक्त सूची में नोट/लिखे गए थे। उसके बाद, वही नोट अपीलकर्ता को दिए गए और उसके कहने पर बरामद किए गए। जब 13.06.1986 को बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श पी-11) तैयार किया गया था, तो

बरामद नोटों का विवरण और नंबर बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श पी-11) में उल्लिखित नहीं थे। अतः, अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे यह साबित नहीं किया है कि सूची में लिखे गए करेंसी नोट वही नोट थे, जो अपीलकर्ता को दिए गए थे। अतः, अपीलकर्ता से नोटों की बरामदगी संदिग्ध प्रतीत होती है।

23. जब जाल कार्यवाही की गई थी, तो आरएच-1, एलएच-1 और पी-1 के रूप में चिह्नित तीन प्रकार की बोतलें तैयार की गई थीं और उन्हें 03.07.1986 को रसायन-सह-मुख्य लोक विश्लेषक को भेजा गया था। लेकिन न तो मालखाना रजिस्टर और न ही मालखाना प्रभारी को परीक्षण न्यायालय के रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया गया है जहां ये नमूने बरकरार रखे गए थे और रिकॉर्ड पर कोई साक्ष्य नहीं रखा गया है जिससे यह संकेत मिले कि प्रदर्श पी-15 के रूप में लगाई गई मुहरों को नष्ट कर दिया गया था या संबंधित साक्षियों को सौंप दिया गया था या नहीं। अतः, साक्ष्य और मुहरों के साथ छेड़छाड़ की संभावना को खारिज नहीं किया जा सकता है और संदेह अभियोजन पक्ष के खिलाफ जाता है।

24. पूरी जाल कार्यवाही किराए के परिसर में की गई थी जहां अपीलकर्ता रह रहा था, लेकिन न तो मकान मालिक और न ही पड़ोसी साक्षियों के बयान अभियोजन पक्ष द्वारा दर्ज किए गए हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक है।

25. 1947 के अधिनियम की धारा 6 के तहत किसी अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए, राज्य से पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। अधिनियम की धारा 6 इस प्रकार है:

"6. अभियोजन के लिए पूर्व स्वीकृति आवश्यक:

(1) कोई भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 161 या धारा 164 या धारा 165 के तहत या इस अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) या उप-धारा (3 ए) के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, जिसे किसी लोक सेवक द्वारा किया गया बताया गया है, सिवाय पूर्व स्वीकृति के, -

(a) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो संघ के मामलों के संबंध में नियोजित है और जिसे केंद्रीय सरकार के अनुमोदन से या उसके बिना उसके पद से नहीं हटाया जा सकता है, केंद्रीय सरकार की;

(b) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित है और जिसे राज्य सरकार के अनुमोदन से या उसके बिना उसके पद से नहीं हटाया जा सकता है, राज्य सरकार की;

(c) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उस प्राधिकारी की जो उसे उसके पद से हटाने के लिए सक्षम है।

(2) जहां किसी भी कारण से कोई संदेह उत्पन्न होता है कि उप-धारा (1) के तहत आवश्यक पूर्व स्वीकृति केंद्रीय या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए, ऐसी स्वीकृति उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी, जो अपराध किए जाने के समय लोक सेवक को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम होता।"

यहां, इस मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श पी-17) भूमि बंदोबस्त आयुक्त श्री जी.आर. यादव द्वारा जारी की गई है, जिन्होंने अपीलकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए उनके समक्ष रखे गए रिकॉर्ड को नहीं देखा है। प्रदर्श पी-17 के पैरा 1, 2 और 3 में बार-बार उन्होंने कहा है कि "उनके संज्ञान में लाया गया है" कि अपीलकर्ता ने परिवादी से 1,000/- रुपये की रिश्त की मांग की थी और उसके बाद जाल कार्यवाही की गई और जब उसे पकड़ा गया तो उसके दाहिने हाथ को पानी में धोया गया और पानी का रंग बदल गया। जबकि, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, जब अपीलकर्ता के बाएं हाथ को धोया गया तो पानी का रंग 'गुलाबी' हो गया और जब दाहिने हाथ को धोया गया तो पानी का रंग 'गंदा' हो गया।

26. अभियोजन स्वीकृति प्रदर्श पी-17 की पूरी सामग्री के अवलोकन से पता चलता है कि जिस अधिकारी ने यह स्वीकृति जारी की है, उसने उसे प्रदान किए गए रिकॉर्ड और कागजात की जांच नहीं की है और यही कारण है कि उसने कहीं भी यह नहीं कहा है कि उसने रिकॉर्ड का अवलोकन किया और अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों को उसके खिलाफ स्वीकृति जारी करने के लिए साबित पाया। स्वीकृति देने वाले प्राधिकारी द्वारा मन का अनुपयोग पूर्ण रूप से किया गया है। अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श पी-17) में केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 126/86 का उल्लेख है, लेकिन इसमें पुलिस स्टेशन का नाम नहीं है। इस स्वीकृति पर कोई दिनांक या प्रेषण संख्या नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि यह किस तारीख को जारी की गई थी। अतः, स्वीकृति स्वयं कमजोरियों से ग्रस्त है और यह वैध नहीं है। अतः, वैध स्वीकृति के अभाव में, अपीलकर्ता पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था।

26. यहां, इस मामले में घटना की तारीख 12.06.1986 है, पूरी जाल कार्यवाही अगले ही दिन 13.06.1986 को की गई थी, लेकिन प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श पी-26 17.06.1986 को दर्ज की गई थी और इसे 26.06.1986 को विशेष न्यायाधीश एसीडी जयपुर को भेजा गया था, जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट संबंधित न्यायालय को 24 घंटे के भीतर भेजी जानी चाहिए। अतः, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में 5 दिनों की देरी और इसे न्यायालय भेजने में 9 दिनों की देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह पैदा करती है।

27. अब यह न्यायालय परीक्षण न्यायालय द्वारा प्रक्रियात्मक चूक पर आगे बढ़ता है जहां अपीलकर्ता के खिलाफ परीक्षण किया गया था। रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि दस्तावेज प्रदर्श पी-2, 3, 4, 5, 6, 7, 10, 13, 20, 21, 22, 23 और 24 फोटोकॉपी हैं, और ये दस्तावेज न तो मूल हैं और न ही उक्त दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां हैं। जब तक इन दस्तावेजों पर द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 और 66 के तहत अभियोजन पक्ष को अनुमति/नोटिस नहीं दिया जाता है, तब तक इन दस्तावेजों को प्रदर्श के रूप में चिह्नित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। लेकिन परीक्षण न्यायालय द्वारा दस्तावेजों की फोटोकॉपी को प्रदर्श के रूप में चिह्नित करने की अनुमति देने के लिए एक सामान्य प्रक्रिया अपनाई गई है। इन दस्तावेजों की फोटोकॉपी को उनके मूल से तुलना नहीं की गई थी, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 5/65 के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार है और यही कारण है कि उनकी फोटोकॉपी को प्रदर्श के रूप में चिह्नित नहीं किया जा सकता है।

28. सामान्य नियम (आपराधिक), 1980 के नियम 31 (डी) के अनुसार, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत और साक्ष्य में स्वीकार किए गए और साबित हुए प्रत्येक दस्तावेज को लाल स्याही में और ब्लॉक अक्षरों में दर्ज किया जाएगा और पीठासीन अधिकारी द्वारा पदनाम के साथ आद्याक्षरित और दिनांकित किया जाएगा। उक्त नियम 31 इस प्रकार है:

"31 प्रदर्शों का चिह्नांकन:-

(a) न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत और साक्ष्य में स्वीकार किए गए और साबित हुए प्रत्येक दस्तावेज पर मामले के सामान्य सूचकांक में उसका नंबर और मामले का नंबर और शीर्षक स्पष्ट रूप से चिह्नित किया जाएगा।

(b) न्यायालय अभियोजन पक्ष की ओर से साक्ष्य में स्वीकार किए गए दस्तावेजों को 'पी' अक्षर और एक अंक के साथ उस क्रम में चिह्नित करेगा जिसमें उन्हें स्वीकार किया गया है, इस प्रकार: -प्रदर्श पी. 1, प्रदर्श पी. 2, और प्रदर्श पी. 3 आदि। और बचाव पक्ष की ओर से स्वीकार किए गए दस्तावेजों को 'डी' अक्षर और अंक के साथ इस प्रकार: -प्रदर्श डी. 1. प्रदर्श डी. 2. और प्रदर्श डी. 3 आदि।

(c) इसी तरह अभियोजन पक्ष की ओर से साक्ष्य में स्वीकार किए गए प्रत्येक भौतिक प्रदर्श को क्रम संख्या में 'एआरटी' शब्द के बाद चिह्नित किया जाएगा जैसे प्रदर्श कला. 1, प्रदर्श कला. 2. प्रदर्श कला. 3 और बचाव पक्ष की ओर से स्वीकार किए गए भौतिक प्रदर्श को 'ए' अक्षर के साथ क्रम संख्या में चिह्नित किया जाएगा जैसे प्रदर्श कला. ए-1, प्रदर्श कला. ए-2 और प्रदर्श कला. ए-3 आदि।

(d) दस्तावेजों और भौतिक प्रदर्शों पर सभी प्रदर्श चिह्न लाल स्याही में और ब्लॉक अक्षरों में दर्ज किए जाएंगे और न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा पदनाम के साथ आयाक्षरित और दिनांकित किए जाएंगे।

(e) कोई भी दस्तावेज या भौतिक प्रदर्श, जिसे साक्ष्य में स्वीकार किया गया है और प्रदर्शित किया गया है, तब तक वापस नहीं किया जाएगा या नष्ट नहीं किया जाएगा जब तक अपील या पुनरीक्षण की अवधि समाप्त नहीं हो जाती या जब तक अपील या पुनरीक्षण का निपटारा नहीं हो जाता।

(f) दस्तावेज और भौतिक प्रदर्श, जिन्हें साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया गया है, उन्हें रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं बनाया जाएगा और उन्हें उस पक्ष को वापस कर दिया जाएगा जिसने उन्हें प्रस्तुत किया है, जिसमें मामले का नंबर और शीर्षक, दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का नाम और उस पर 'वापस किया गया' शब्द का पृष्ठांकन होगा, जिस पर पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर या आयाक्षर किए जाएंगे।"

रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदन प्रदर्श पी-1 और अन्य दस्तावेज प्रदर्श 2, 3, 4, 5, 6, 7, 10, 13 और 15, अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श पी-17), पत्र (प्रदर्श पी-18) और आवेदन प्रदर्श पी-19 के साथ अन्य दस्तावेज प्रदर्श पी-20, 21, 23, एफएसएल रिपोर्ट प्रदर्श पी-25, और पर्चा प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श पी-26 को पीठासीन अधिकारी द्वारा आयाक्षरित नहीं किया गया है।

28. सामान्य नियम (आपराधिक), 1980 का नियम 59 साक्ष्य और साक्षियों के बयान दर्ज करने के तरीके से संबंधित है। यदि ये बयान अधिकारी द्वारा टाइपराइटर से दर्ज किए जाते हैं, तो वह ऐसे रिकॉर्ड के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर करेगा। सामान्य नियम (आपराधिक), 1980 का संबंधित नियम 59 इस प्रकार है:

"59. साक्ष्य दर्ज करने का तरीका- पीठासीन अधिकारी या न्यायालय के अधिकारी द्वारा बनाए गए साक्ष्य और बयानों का प्रत्येक रिकॉर्ड सुपाठ्य रूप से लिखा जाएगा। यदि ऐसा रिकॉर्ड बनाते समय कोई अधिकारी टाइपराइटर का उपयोग करता है, तो वह ऐसे रिकॉर्ड के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर करेगा और उसमें प्रत्येक सुधार या परिवर्तन को आद्याक्षरित करेगा। प्रत्येक रिकॉर्ड में और प्रत्येक बयान पर, शपथकर्ता, चाहे आयोग पर या अन्यथा जांच की गई हो, को उसके/उसके पूरे नाम के साथ उसके/उसके पिता/पति का नाम, आयु, पेशा और निवास स्थान द्वारा इंगित किया जाएगा और बयान के प्रत्येक बाद के पृष्ठ पर, साक्षी का नंबर, मामले का नंबर और पृष्ठ संख्या का उल्लेख किया जाएगा। किसी भी मामले में साक्षी को केवल एक नंबर से इंगित नहीं किया जाएगा। संक्षिप्त रूप और दीर्घवृत्तीय अभिव्यक्तियों से बचा जाएगा, विशेष रूप से व्यक्तियों या स्थानों के नामों के संक्षिप्त रूपों से।

बनाया गया रिकॉर्ड प्रत्येक साक्षी द्वारा उपयोग किए गए वास्तविक शब्दों और अभिव्यक्तियों का यथासंभव पालन करेगा।"

29. इस मामले में, पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल के बयान दर्ज करते समय, पृष्ठ संख्या 1, 2, 3, 4, 6, 7, 8, 9 और 10 पर पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं जब इस साक्षी के बयान दर्ज किए गए थे। इसी तरह पी.डब्ल्यू.-2 के.एन. शर्मा के बयानों के पृष्ठ संख्या 1, 2 और पृष्ठ संख्या 3 के आधे हिस्से पर पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं। साथ ही पी.डब्ल्यू.-4 मालू राम के बयान के पृष्ठ संख्या 2, 3, 4 और 5 पर। पी.डब्ल्यू.-5 ए.पी. सिंह के बयानों के पृष्ठ संख्या 1, 2 और 3 पर। पी.डब्ल्यू.-7 साहिब राम के बयान के पृष्ठ संख्या 1, 2 और 3 पर और पृष्ठ संख्या 4 के आधे हिस्से और पी.डब्ल्यू.-11 महेंद्र कुमार गोविंद के बयान के पृष्ठ संख्या 1 से 4 पर पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं।

साथ ही, दिनांक 29.11.1988 के आदेश-पत्र पर पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं जब पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल के बयान न्यायालय में दर्ज किए

गए थे, जो सामान्य नियम (आपराधिक) 1980 के नियम 26(iii) के तहत अनिवार्य है। अतः, परीक्षण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ परीक्षण करते समय सामान्य नियम (आपराधिक) 1980 के नियम 26(iii), नियम 31 और नियम 59 के अनिवार्य प्रावधानों के अनुपालन में प्रक्रियात्मक चूक हुई है। अनिवार्य प्रावधानों में, नियम बनाने वाले प्राधिकारी द्वारा 'शैल' शब्द का उपयोग किया गया है जिसे इस मामले में उल्लंघन किया गया है।

30. परीक्षण न्यायालय की ओर से एक और गंभीर चूक तब हुई जब अभियोजन साक्ष्यों के साक्ष्य पूरे होने के बाद अपीलकर्ता के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए। अभियुक्त के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज करते समय केवल पी.डब्ल्यू.-1 घीसालाल, पी.डब्ल्यू.-11 महेंद्र कुमार गोविंद और एफएसएल रिपोर्ट प्रदर्श पी-25 को ही अभियुक्त के समक्ष रखा गया था। शेष अभियोजन साक्ष्यों, अर्थात् पी.डब्ल्यू.-2 के.एन. शर्मा, पी.डब्ल्यू.-3 सागरमल, पी.डब्ल्यू.-4 मालू राम, पी.डब्ल्यू.-5 ए.पी. सिंह, पी.डब्ल्यू.-6 जय सिंह, पी.डब्ल्यू.-7 साहिब राम, पी.डब्ल्यू.-8 जी.आर. यादव, पी.डब्ल्यू.-9 बाबूलाल माली और पी.डब्ल्यू.-10 रामपाल के बयान अपीलकर्ता के समक्ष नहीं रखे गए थे जब उसके बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए थे।

31. अभियुक्त की जांच करने की शक्ति धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदान की गई है, जो इस प्रकार है: -

"313. अभियुक्त की जांच करने की शक्ति-

(1) प्रत्येक जांच या परीक्षण में, अभियुक्त को अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति को व्यक्तिगत रूप से समझाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से, न्यायालय-

(a) किसी भी स्तर पर, अभियुक्त को पूर्व चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जिन्हें न्यायालय आवश्यक समझे;

(b) अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों की जांच होने के बाद और उसके बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले, उससे मामले के संबंध में सामान्य रूप से प्रश्न करेगा: बशर्ते कि समन-मामले में, जहां न्यायालय ने अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी है, वह खंड (b) के तहत उसकी जांच से भी छूट दे सकता है।

(2) जब अभियुक्त की उप-धारा (1) के तहत जांच की जाती है तो उसे कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी।

(3) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करने या उनके गलत उत्तर देने से दंड के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

(4) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच या परीक्षण में विचार में लिया जा सकता है, और किसी अन्य अपराध की किसी अन्य जांच या परीक्षण में उसके विरुद्ध या उसके पक्ष में साक्ष्य में रखा जा सकता है, जिसे ऐसे उत्तरों से यह दिखाने की प्रवृत्ति हो कि उसने किया है।

(5) न्यायालय अभियुक्त से पूछे जाने वाले प्रासंगिक प्रश्न तैयार करने में अभियोजक और बचाव पक्ष के वकील की सहायता ले सकता है और न्यायालय इस धारा के पर्याप्त अनुपालन के रूप में अभियुक्त द्वारा लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति दे सकता है।"

32. धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दो प्रकार की जांच होती है। पहली धारा 313 (1) (a) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जांच या परीक्षण के किसी भी स्तर से संबंधित है; जबकि दूसरी धारा 313 (1) (b) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत होती है जो अभियोजन साक्ष्यों की जांच के बाद और अभियुक्त को अपना बचाव प्रस्तुत करने के लिए बुलाए जाने से पहले होती है। पूर्व विशिष्ट और वैकल्पिक है; लेकिन बाद वाली सामान्य और अनिवार्य है। **उषा के. पिल्लई बनाम राज के. श्रीनिवास और अन्य, (1993) 3 एससीसी 208** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि न्यायालय को धारा 313 (1) खंड (a) द्वारा जांच या परीक्षण के किसी भी स्तर पर अभियुक्त से प्रश्न पूछने का अधिकार है; जबकि धारा 313 (1) खंड (b) न्यायालय को अभियुक्त को उसके विरुद्ध अभियोजन साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति पर अपना बचाव प्रस्तुत करने से पहले प्रश्न पूछने के लिए बाध्य करता है।

33. धारा 313(1)(b) दंड प्रक्रिया संहिता का उद्देश्य अभियुक्त को आरोप का सार बताना है ताकि अभियुक्त अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली प्रत्येक परिस्थिति को समझा सके। इस धारा के प्रावधान अनिवार्य हैं और न्यायालय पर यह कर्तव्य डालते हैं कि वह अभियुक्त को उसके विरुद्ध प्रत्येक परिस्थिति और दोष सिद्ध करने वाले साक्ष्य को समझाने का अवसर प्रदान करे। धारा 313(1)(b) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त की जांच केवल एक औपचारिकता नहीं है। धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता

अभियुक्त के लिए एक प्रक्रियात्मक सुरक्षा निर्धारित करती है, जो उसे साक्ष्य में उसके विरुद्ध प्रकट होने वाले तथ्यों और परिस्थितियों को समझाने का अवसर देती है और यह अवसर अभियुक्त के दृष्टिकोण से मूल्यवान है। धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता का वास्तविक महत्व इसमें निहित है कि यह न्यायालय पर यह कर्तव्य डालता है कि वह अभियुक्त से उचित और निष्पक्ष रूप से प्रश्न करे ताकि उसे उस सटीक मामले से अवगत कराया जा सके जिसका उसे सामना करना होगा और इस प्रकार, उसे किसी भी ऐसे बिंदु को समझाने का अवसर दिया जाता है।

34. धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान के महत्व पर विस्तार से बताते हुए, परमजीत सिंह उर्फ पम्मा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2010) 10 एससीसी 439 (पैरा 22) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता निष्पक्षता के मूलभूत सिद्धांत पर आधारित है। अभियुक्त का ध्यान विशेष रूप से दोष सिद्ध करने वाले साक्ष्य पर लाया जाना चाहिए ताकि उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर मिल सके यदि वह ऐसा करना चाहता है। इसलिए, न्यायालय पर यह कानूनी दायित्व है कि वह अभियुक्त के समक्ष दोष सिद्ध करने वाली परिस्थितियों को रखे और उसकी प्रतिक्रिया मांगे। यह प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य है और न्यायालय पर एक अनिवार्य कर्तव्य डालता है और अभियुक्त को उसके विरुद्ध प्रकट होने वाली ऐसी दोष सिद्ध करने वाली सामग्री के लिए स्पष्टीकरण देने का अवसर प्राप्त करने का एक संबंधित अधिकार प्रदान करता है। जिन परिस्थितियों को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसकी जांच में अभियुक्त के समक्ष नहीं रखा गया था, उनका उपयोग उसके विरुद्ध नहीं किया जा सकता है और उन्हें विचार से बाहर रखा जाना चाहिए।" (शरद बिर्धिचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116 और महाराष्ट्र राज्य बनाम सुखदेव सिंह (1992) 3 एससीसी 700 देखें)।

35. बसावा आर. पाटिल और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, (2000) 8 एससीसी 740 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के दायरे पर विचार किया और पैरा (18) से (20) में निम्नानुसार माना: -

"18. संहिता की धारा 313 के तहत अभियुक्त की जांच का उद्देश्य क्या है? धारा स्वयं स्पष्ट भाषा में उद्देश्य घोषित करती है कि यह "अभियुक्त को अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति को व्यक्तिगत रूप से समझाने में सक्षम बनाने के

उद्देश्य से" है। जय देव बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1963 एससी 612) में गर्जेन्द्रगडकर, जे. (तब वे थे) ने तीन-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए, यह निर्धारित करने में अंतिम परीक्षण पर ध्यान केंद्रित किया है कि प्रावधान का उचित रूप से अनुपालन किया गया है या नहीं। उन्होंने इस प्रकार अवलोकन किया:

"यह निर्धारित करने में अंतिम परीक्षण कि धारा 342 के तहत अभियुक्त की निष्पक्ष रूप से जांच की गई है या नहीं, यह जांचना होगा कि, उससे पूछे गए सभी प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, उसे अभियोजन पक्ष के मामले के संबंध में जो कुछ भी कहना था, उसे कहने का अवसर मिला या नहीं। यदि यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति की जांच दोषपूर्ण थी और इस प्रकार उसे कोई पूर्वाग्रह हुआ है, तो यह निस्संदेह एक गंभीर दुर्बलता होगी।"

19. इस प्रकार यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रावधान मुख्य रूप से अभियुक्त को लाभ पहुंचाने के लिए है और इसके परिणामस्वरूप न्यायालय को अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने में लाभ पहुंचाने के लिए है।

20. साथ ही यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रावधान का उद्देश्य उसे किसी भी स्थिति में बांधना नहीं है, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत *ऑडी अल्टरम पार्टेम* (दूसरे पक्ष को सुनना) का अनुपालन करना है। संहिता की धारा 313 की उप-धारा (1) के खंड (a) में "सकता है" शब्द, बिना किसी संदेह के, इंगित करता है कि भले ही न्यायालय उस खंड के तहत कोई प्रश्न न पूछे, अभियुक्त इसके लिए कोई शिकायत नहीं उठा सकता है। लेकिन यदि न्यायालय उप-धारा के खंड (b) के तहत आवश्यक प्रश्न पूछने में विफल रहता है तो इसका परिणाम अभियुक्त के लिए एक बाधा होगी और वह वैध रूप से दावा कर सकता है कि उसे स्पष्टीकरण का अवसर दिए बिना कोई भी साक्ष्य उसके विरुद्ध उपयोग नहीं किया जा सकता है। अब यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक परिस्थिति जिसके बारे में अभियुक्त से स्पष्टीकरण के लिए नहीं पूछा गया था, उसका उपयोग उसके विरुद्ध नहीं किया जा सकता है।"

36. अवतार सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, रिपोर्टेड (2002) 7 एससीसी 419

के मामले में, जब अभियुक्तों की धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जांच की गई थी, तो आरोप का सार, विशेष रूप से माल का कब्जा, उनके ध्यान में नहीं लाया गया था। यह भी देखा गया कि अभियुक्त व्यक्तियों के ट्रक के मजदूर होने की संभावना को साक्ष्य द्वारा खारिज नहीं किया गया था। अवतार सिंह का मामला उस मामले के कई

विशिष्ट तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने के बाद तय किया गया था और यह सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कानून नहीं बनाता है क्योंकि इसे अपने स्वयं के तथ्यों पर तय किया गया था।

37. निस्संदेह, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान का महत्व, जहां तक अभियुक्त का संबंध है, शायद ही कम किया जा सकता है। सांविधिक प्रावधान अभियुक्त के लिए प्राकृतिक न्याय के नियमों पर आधारित है, जिसे उसके विरुद्ध रखी जा रही परिस्थितियों से अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वह उस मामले को पूरा करने के लिए उचित स्पष्टीकरण दे सके। यदि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के बयान के संबंध में आपत्ति सबसे शुरुआती चरण में उठाई जाती है, तो न्यायालय दोष को ठीक कर सकता है और अभियुक्त का अतिरिक्त बयान दर्ज कर सकता है क्योंकि यह सभी के हित में होगा। जब दोषपूर्ण धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के बयान के संबंध में अपील न्यायालय में आपत्तियां उठाई जाती हैं, तो अभियोजन पक्ष के साथ-साथ अभियुक्त के लिए भी कठिनाई उत्पन्न होती है। जब परीक्षण न्यायालय को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अनिवार्य प्रावधानों के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है, तो परीक्षण न्यायालय द्वारा कानून के जनादेश का पालन करने में विफलता, मेरे विचार में, स्वचालित रूप से अभियुक्त के लाभ के लिए नहीं हो सकती है। न्यायालय द्वारा किसी भी दोष सिद्ध करने वाली परिस्थिति पर अभियुक्त से प्रश्न पूछने में कोई भी चूक, परीक्षण को स्वयं में तब तक दूषित नहीं करेगी, जब तक कि अभियुक्त को कुछ भौतिक पूर्वाग्रह होने का प्रदर्शन न किया जाए। जहां तक धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अनिवार्य प्रावधानों का गैर-अनुपालन है, यह विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा की गई एक त्रुटि है। चूंकि न्याय न्यायालय के हाथों में पीड़ित होता है, इसलिए इसे अपील में ठीक या सुधारा जाना चाहिए।

38. जहां तक धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता का संबंध है, निस्संदेह, अभियुक्त का ध्यान विशेष रूप से दोष सिद्ध करने वाले साक्ष्य पर लाया जाना चाहिए ताकि उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर मिल सके, यदि वह ऐसा करना चाहता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने वसीम खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिपोर्टेड एआईआर 1956 एससी 400; और भूर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, रिपोर्टेड

एआईआर 1974 एससी 1256 में माना कि पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के प्रावधानों के अनुपालन में प्रत्येक त्रुटि या चूक आवश्यक रूप से परीक्षण को दूषित नहीं करती है। अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि उसे कुछ पूर्वाग्रह हुआ है या होने की संभावना थी।

39. यह देखते हुए कि अभियुक्त के समक्ष किसी भी महत्वपूर्ण परिस्थिति को रखने में चूक *स्वयं* में परीक्षण को दूषित नहीं करती है और अभियुक्त को पूर्वाग्रह दिखाना होगा और उसे न्याय का घोर उल्लंघन हुआ है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **संतोष कुमार सिंह बनाम राज्य सीबीआई के माध्यम से, रिपोर्टेड (2010) 9 एससीसी 747** के पैरा 92 में निम्नानुसार माना है:

"...प्रत्येक मामले के तथ्यों की जांच की जानी है, लेकिन व्यापक सिद्धांत यह है कि सभी दोष सिद्ध करने वाली भौतिक परिस्थितियों को संहिता की धारा 313 के तहत उसका बयान दर्ज करते समय अभियुक्त के समक्ष रखा जाना चाहिए, लेकिन यदि कोई भौतिक परिस्थिति छूट गई है तो वह *स्वयं* में उस साक्ष्य को विचार से बाहर करने का परिणाम नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त द्वारा यह और न दिखाया जा सके कि उसे पूर्वाग्रह और न्याय का घोर उल्लंघन हुआ है..."

40. **परमजीत सिंह उर्फ पम्मा बनाम उत्तराखंड राज्य (उपर्युक्त)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: -

"इस प्रकार, उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान न्यायालय के लिए अभियुक्त से उसके विरुद्ध साक्ष्य और परिस्थितियों पर प्रश्न करना अनिवार्य बनाते हैं ताकि अभियुक्त को उन्हें समझाने का अवसर मिल सके। लेकिन, अभियुक्त के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं होगा कि उससे किसी विशेष परिस्थिति पर प्रश्न नहीं किया गया या उसकी जांच नहीं की गई, बल्कि, उसे यह दिखाना होगा कि ऐसी गैर-जांच ने वास्तव में और भौतिक रूप से उसे पूर्वाग्रह किया है और न्याय की विफलता का परिणाम हुआ है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय द्वारा किसी दोष सिद्ध करने वाली परिस्थिति पर अभियुक्त से प्रश्न पूछने में किसी अनजाने में हुई चूक की स्थिति में परीक्षण को *स्वयं* में तब तक दूषित नहीं किया जा सकता जब तक यह न दिखाया जाए कि न्यायालय की चूक से अभियुक्त को कुछ भौतिक पूर्वाग्रह हुआ था।"

41. यह प्रश्न कि क्या कोई परीक्षण दूषित है या नहीं, त्रुटि की डिग्री पर निर्भर करता है और अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के गैर-अनुपालन ने उसे भौतिक रूप से पूर्वाग्रह किया है या उसे पूर्वाग्रह होने की संभावना है। केवल धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दोषपूर्ण प्रश्न पूछने के कारण, यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह हुआ था, भले ही अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ दोष सिद्ध करने वाली परिस्थितियां छूट गई हों। जब अभियुक्त को पूर्वाग्रह का आरोप लगाया जाता है, तो यह दिखाना होगा कि अभियुक्त को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसे दी गई सुरक्षा के संबंध में कुछ अक्षमता या हानि हुई है। ऐसा पूर्वाग्रह यह भी प्रदर्शित करना चाहिए कि इससे अभियुक्त को न्याय की विफलता हुई है। यह साबित करने का भार अभियुक्त पर है कि उसे पूर्वाग्रह हुआ है या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, ऐसा पूर्वाग्रह निहित हो सकता है और न्यायालय ऐसे पूर्वाग्रह का अनुमान लगा सकता है। प्रत्येक मामले के तथ्यों की जांच यह निर्धारित करने के लिए की जानी है कि अभियुक्त के समक्ष कुछ दोष सिद्ध करने वाली परिस्थितियों को रखने में चूक के कारण वास्तव में अपीलकर्ता को कोई पूर्वाग्रह हुआ है या नहीं।

42. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उचित होगा जिसमें यह माना गया है कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रश्न पूछने में चूक के कारण अभियुक्त को पूर्वाग्रह हुआ है जिससे दोषसिद्धि दूषित हो गई है। **पंजाब राज्य बनाम हरि सिंह और अन्य**, रिपोर्टेड (2009) 4 एससीसी 200 के मामले में, जब अभियुक्त की धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जांच की गई थी, तो उसे नशीले पदार्थों के सचेत कब्जा के संबंध में प्रश्न नहीं पूछा गया था। यह पाते हुए कि अवैध वस्तु के सचेत कब्जा से संबंधित प्रश्न अभियुक्त से नहीं पूछा गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसी चूक का प्रभाव अभियोजन पक्ष के मामले को गंभीर रूप से प्रभावित करता है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति की पुष्टि की। **कुलदीप सिंह और अन्य बनाम दिल्ली राज्य**, रिपोर्टेड (2003) 12 एससीसी 528 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जब धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त की जांच के दौरान महत्वपूर्ण दोष सिद्ध करने वाली परिस्थिति को अभियुक्त के

समक्ष नहीं रखा गया था, तो अभियोजन पक्ष उस साक्ष्य के टुकड़े पर भरोसा नहीं कर सकता है।

43. जब धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रश्न पूछने में चूक के संबंध में ऐसी आपत्ति अपील न्यायालय में अभियुक्त द्वारा उठाई जाती है और अभियुक्त को पूर्वाग्रह होने का भी प्रदर्शन किया जाता है, तो अपील न्यायालय के लिए कौन से विकल्प उपलब्ध हैं? अपील न्यायालय दोषी की जांच कर सकता है या अभियुक्त के वकील से यह दिखाने के लिए कह सकता है कि अभियुक्त के पास उसके विरुद्ध स्थापित परिस्थितियों के संबंध में क्या स्पष्टीकरण है, लेकिन उसे धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नहीं रखा गया था और उस उत्तर को विचार में लिया जा सकता है।

44. शिवाजी सहब्राव बोबाडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, रिपोर्टेड (1973) 2 एससीसी 793 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उसके विरुद्ध प्रकट होने वाली महत्वपूर्ण परिस्थिति पर अभियुक्त से प्रश्न पूछने में चूक के परिणाम पर विचार किया और इस न्यायालय ने माना है कि अपील न्यायालय अभियुक्त के वकील से उस परिस्थिति के संबंध में प्रश्न कर सकता है जिसे अभियुक्त के समक्ष रखने में चूक हुई थी और पैरा 16 में निम्नानुसार माना गया था:-

"...यह एक स्थापित कानून है, फिर भी मौलिक है, कि कैदी का ध्यान प्रत्येक दोष सिद्ध करने वाली सामग्री पर आकर्षित किया जाना चाहिए ताकि वह उसे समझा सके। यह एक आपराधिक परीक्षण की मूल निष्पक्षता है और इस क्षेत्र में विफलताएं परीक्षण की वैधता को गंभीर रूप से खतरे में डाल सकती हैं, यदि परिणामस्वरूप न्याय का घोर उल्लंघन हुआ हो। हालांकि, जहां ऐसी चूक हुई है, यह स्वयं में कार्यवाही को दूषित नहीं करती है और ऐसे दोष के कारण हुए पूर्वाग्रह को अभियुक्त द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। साक्ष्य सामग्री को अभियुक्त के समक्ष न रखने की स्थिति में, न्यायालय को सामान्यतः ऐसी सामग्री को विचार से बाहर रखना चाहिए। अपील न्यायालय के लिए यह भी खुला है कि वह अभियुक्त के वकील से यह दिखाने के लिए कहे कि अभियुक्त के पास उसके विरुद्ध स्थापित परिस्थितियों के संबंध में क्या स्पष्टीकरण है, लेकिन उसे नहीं रखा गया था और यदि अभियुक्त अपील न्यायालय को ऐसी परिस्थितियों का कोई विश्वसनीय या उचित स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है, तो न्यायालय यह मान सकता है कि कोई स्वीकार्य उत्तर मौजूद नहीं है और

यदि अभियुक्त से परीक्षण न्यायालय में उचित समय पर प्रश्न किया गया होता तो भी वह उन परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए कोई अच्छा आधार प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं होता जिन पर परीक्षण न्यायालय ने अपनी दोषसिद्धि के लिए भरोसा किया था। ऐसे मामले में, न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ता है कि यद्यपि धारा 342 दंड प्रक्रिया संहिता के अनुपालन के संबंध में एक गंभीर अनियमितता हुई है, लेकिन यह नहीं दिखाया गया है कि चूक से अभियुक्त को पूर्वाग्रह हुआ है...."

45. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम धर्मपाल, रिपोर्टेड (2001) 10 एससीसी 372 के मामले में भी यही विचार दोहराया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: -

"इस प्रकार यह देखा जाना है कि जहां किसी दोष सिद्ध करने वाली सामग्री पर अभियुक्त का ध्यान आकर्षित करने में चूक हुई है, वह स्वयं में कार्यवाही को दूषित नहीं करती है। अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि ऐसी चूक से न्याय की विफलता हुई थी। इसके अलावा, दोष सिद्ध करने वाली सामग्री को अभियुक्त के समक्ष न रखने की स्थिति में, अपील न्यायालय हमेशा अभियुक्त के वकील से यह दिखाने के लिए कहकर उस चूक को ठीक कर सकता है कि अभियुक्त के पास उसके विरुद्ध स्थापित परिस्थितियों के संबंध में क्या स्पष्टीकरण है, लेकिन उसे नहीं रखा गया था।

यह कानून होने के कारण, हमारे विचार में, सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय दोनों यह निष्कर्ष निकालने में गलत थे कि निदेशक, केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला के प्रमाण पत्र की सामग्री को न रखने से केवल अभियुक्त को दोषमुक्त किया जा सकता है। अभियुक्त को यह दिखाना था कि रिपोर्ट को उसके समक्ष न रखने से उसे कुछ पूर्वाग्रह हुआ था। अन्यथा भी, सत्र न्यायाधीश और/या उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य था, यदि उन्हें लगता कि कोई महत्वपूर्ण परिस्थिति अभियुक्त के समक्ष नहीं रखी गई थी, तो वे अभियुक्त के वकील से वे प्रश्न पूछें और अभियुक्त के उत्तर प्राप्त करें। यदि अभियुक्त कोई विश्वसनीय या उचित स्पष्टीकरण नहीं दे सका, तो यह मान लिया जाएगा कि कोई स्पष्टीकरण नहीं था। सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय दोनों ने कानून की इस स्थिति को अनदेखा किया और अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहे और इस प्रकार अभियुक्त को गलत तरीके से दोषमुक्त कर दिया।"

46. तब इस न्यायालय के विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि, यदि परीक्षण न्यायालय द्वारा अभियुक्त से धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अनिवार्य रूप से सभी

प्रासंगिक प्रश्न नहीं पूछे गए थे और जहां अभियुक्त ने यह भी दिखाया है कि उसे पूर्वाग्रह हुआ है या जहां पूर्वाग्रह निहित है, तो क्या अपील न्यायालय के पास धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के चरण से मामले को पुनः निर्णय के लिए वापस भेजने की शक्ति है। धारा 386 दंड प्रक्रिया संहिता अपील न्यायालय की शक्ति से संबंधित है। धारा 386 दंड प्रक्रिया संहिता के उप-खंड (b)(i) के अनुसार, अपील न्यायालय के पास ऐसे अपील न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा मामले के पुनर्परीक्षण का आदेश देने की शक्ति है। अतः, यदि परीक्षण न्यायालय द्वारा अभियुक्त से सभी प्रासंगिक प्रश्न नहीं पूछे गए थे और जब अभियुक्त ने दिखाया है कि उसे पूर्वाग्रह हुआ था, तो अपील न्यायालय के पास धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त की फिर से जांच करने के लिए मामले को वापस भेजने की शक्ति है और धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के उस चरण से मामले के पुनर्परीक्षण के लिए मामले को वापस भेजने का निर्देश दे सकता है और इसे अभियोजन पक्ष के मामले में कमी को पूरा करने वाला नहीं कहा जा सकता है।

47. **अशरफ अली बनाम असम राज्य, रिपोर्टेड (2008) 16 एससीसी 328** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त की जांच के दायरे और उद्देश्य की जांच की है और पैरा (24) में यह देखा गया था कि कुछ मामलों में जब संहिता की धारा 313 के तहत सरसरी जांच होती है, तो मामले को परीक्षण न्यायालय को उस चरण से पुनर्परीक्षण करने के निर्देश के साथ वापस भेजा जा सकता है जिस पर अभियोजन पक्ष बंद कर दिया गया था।

48. **गणेशमल जशराज बनाम गुजरात सरकार और अन्य, रिपोर्टेड (1980) 1 एससीसी 363** के मामले में, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य बंद होने और धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त की जांच पूरी होने के बाद, अभियुक्त ने अपनी गलती स्वीकार कर ली, संभवतः याचिका समझौता के परिणामस्वरूप और अभियुक्त को दोषी ठहराया गया। यह बताते हुए कि परीक्षण न्यायालय का दृष्टिकोण अभियुक्त द्वारा की गई गलती की स्वीकारोक्ति से प्रभावित था और अभियुक्त की दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले को परीक्षण न्यायालय को धारा

313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जांच के चरण से नए सिरे से आगे बढ़ने के लिए वापस भेज दिया है।

49. जब भी अपील न्यायालय में साक्ष्य के महत्वपूर्ण टुकड़े पर अभियुक्त से प्रश्न पूछने की चूक की याचिका उठाई जाती है, तो अपील न्यायालय के लिए उपलब्ध विकल्पों को संक्षेप में निम्नानुसार सारांशित किया जा सकता है: -

"(i) जब भी धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के गैर-अनुपालन की याचिका उठाई जाती है, तो अपील न्यायालय के पास दोषी या अभियुक्त के लिए उपस्थित वकील की जांच करने और आगे जांच करने की शक्तियां होती हैं और उक्त उत्तरों को मामले का निर्णय करने के लिए विचार में लिया जाएगा। यदि अभियुक्त अपील न्यायालय को ऐसी परिस्थिति का कोई उचित स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है, तो न्यायालय यह मान सकता है कि अभियुक्त के पास देने के लिए कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है;

(ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यदि अपील न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था या न्याय की कोई विफलता नहीं हुई थी, तो अपील न्यायालय गुणों के आधार पर मामले की सुनवाई करेगा और निर्णय करेगा।

(iii) यदि अपील न्यायालय की राय है कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का गैर-अनुपालन अभियुक्त को पूर्वाग्रह का कारण बना है या होने की संभावना है, तो अपील न्यायालय उस बिंदु से अभियुक्त के बयानों को दर्ज करने के चरण से पुनर्परीक्षण का निर्देश दे सकता है जहां अनियमितता हुई थी, यानी धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियुक्त से प्रश्न पूछने के चरण से और परीक्षण न्यायाधीश को अभियुक्त की नए सिरे से जांच करने और यदि कोई बचाव साक्षी हो तो उसकी जांच करने और मामले का नए सिरे से निपटान करने का निर्देश दिया जा सकता है;

(iv) अपील न्यायालय मामले को पुनर्परीक्षण के लिए परीक्षण न्यायालय को वापस भेजने से इनकार कर सकता है क्योंकि मामले के परीक्षण में पहले ही लंबा समय लग चुका है और दोषी द्वारा पहले ही सजा की अवधि भुगती जा चुकी है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अभियुक्त को हुए पूर्वाग्रह को ध्यान में रखते हुए, अपील का निर्णय अपने गुणों के आधार पर कर सकता है।"

50. अब इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए शेष प्रश्न यह है कि क्या इस चरण पर, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत निहित प्रावधानों का आवश्यक अनुपालन

करने के लिए मामले को परीक्षण न्यायालय को वापस भेजा जाना आवश्यक है या नहीं?

51. प्रश्नगत घटना 38 साल पहले यानी 12.06.1986 को हुई थी। अपीलकर्ता ने लगभग चार दशकों की लंबी परीक्षण की पीड़ा पहले ही भुगती है और इस लंबी अवधि के लिए न्यायालय के गलियारों में रहा है। अपीलकर्ता की आयु लगभग 36 वर्ष थी जब उसके बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत परीक्षण न्यायालय के समक्ष 15.04.1991 को दर्ज किए गए थे और इस प्रकार उसकी आयु अब लगभग 70 वर्ष है। परीक्षण को समाप्त होने में पांच साल लगे और अपील के निर्णय में 34 साल लगे। त्वरित परीक्षण और शीघ्र परीक्षण का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत सबसे मूल्यवान और पोषित अधिकारों में से एक है। ऐसी परिस्थितियों में, यदि उसे धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत फिर से जांच के अधीन किया जाता है, तो उसे हुई स्पष्ट अवैधता के मद्देनजर उसे और पूर्वाग्रह होगा। अतः, उसकी दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

52. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नरेश कुमार बनाम दिल्ली राज्य, रिपोर्टेड (2024) 7 एससीआर 178 के मामले में 08.07.2024 को यही विचार व्यक्त किया गया है और पैरा 24 से 28 में यह माना गया है जो निम्नानुसार है:-

"24. परीक्षण न्यायालय के निर्णय के उपरोक्त उद्धृत पैराग्राफ से यह स्पष्ट है कि यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता ने मृतक अरुण कुमार की हत्या करने का सामान्य इरादा साझा किया था, केवल उपरोक्त दो दोष सिद्ध करने वाली परिस्थितियों पर आधारित था जिन्हें धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रश्न करते समय अपीलकर्ता के समक्ष नहीं रखा गया था। जब उसके खिलाफ लगाए गए आरोप, जैसा कि ऊपर संदर्भित है, यह प्रकट करेगा कि अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 300 आईपीसी के तहत दंडनीय धारा 302 आईपीसी के तहत अपराध करने का कोई आरोप नहीं था, जबकि उक्त आरोप धारा 34 आईपीसी की सहायता से था। ऐसी परिस्थितियों में, जब सामान्य इरादे का निष्कर्ष दो दोष सिद्ध करने वाली परिस्थितियों पर आधारित था और जब उन्हें धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रश्न करते समय अपीलकर्ता के समक्ष नहीं रखा गया था, और जब वे अंततः धारा 34 आईपीसी की सहायता से धारा 302 आईपीसी के तहत उसकी दोषसिद्धि में परिणत हुए, और जब उसे परिणामस्वरूप आजीवन

कारावास से सम्मानित किया गया, तो यह केवल यह माना जा सकता है कि अपीलकर्ता को भौतिक रूप से पूर्वाग्रह हुआ था और इसके परिणामस्वरूप न्याय का घोर उल्लंघन हुआ था। उपरोक्त विफलता एक सुधार योग्य दोष नहीं है और यह अपीलकर्ता के संबंध में परीक्षण को दूषित करने वाली स्पष्ट अवैधता के अलावा और कुछ नहीं है।

25. एक बार, चर्चा का परिणाम उपरोक्त है, हम अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए अनगिनत आधारों से निपटना उचित नहीं समझते हैं, न केवल इसलिए कि यह अनावश्यक हो गया है बल्कि इसलिए भी कि ऐसा विचार सह-अभियुक्तों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है जिनकी अपील भी इस अपील में चुनौती दिए गए उसी सामान्य निर्णय के तहत तय की गई थी।

26. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, प्रश्नगत घटना 29 साल से भी पहले हुई थी और अपीलकर्ता पहले ही 12 साल से अधिक कारावास भुगत चुका था। ऐसी परिस्थितियों में, यदि उसे धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत फिर से जांच के अधीन किया जाता है, तो अपीलकर्ता के संबंध में हुई स्पष्ट अवैधता के मद्देनजर उसे और पूर्वाग्रह होगा। अतः, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

27. उपरोक्त कारणों से, अपील सफल होनी चाहिए। तदनुसार, परीक्षण न्यायालय और उच्च न्यायालय का चुनौतीपूर्ण निर्णय अपीलकर्ता के संबंध में निरस्त और रद्द किया जाता है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह निर्णय अन्य अभियुक्तों की दोषसिद्धि को प्रभावित नहीं करेगा। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि इस अवलोकन को उसकी दोषसिद्धि की पुष्टि के रूप में नहीं लिया जाएगा क्योंकि यह एक ऐसा मामला है जिससे उसकी ओर से दायर की गई किसी भी अपील में निपटा जा सकता है। यहां अपीलकर्ता उसके खिलाफ लगाए गए अपराधों से दोषमुक्त होता है। यदि किसी अन्य मामले के संबंध में उसकी हिरासत की आवश्यकता नहीं है, तो उसे तत्काल रिहा किया जाएगा।"

निष्कर्ष

53. उपरोक्त कारणों से, वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है। तदनुसार, परीक्षण न्यायालय द्वारा दिनांक 04.11.1991 को पारित चुनौतीपूर्ण निर्णय निरस्त और रद्द किया जाता है।

54. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 481 के प्रावधानों के मद्देनजर, अभियुक्त-अपीलकर्ता को आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर परीक्षण न्यायालय की

संतुष्टि के लिए 50,000/- रुपये की राशि का एक व्यक्तिगत मुचलका और प्रत्येक 25,000/- रुपये के दो जमानत बांड प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है, जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी रहेगा, इस शर्त के साथ कि यदि इस निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की जाती है या अनुमति प्रदान की जाती है, तो अपीलकर्ता उसकी सूचना प्राप्त होने पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा।

55. आदेश समाप्त करने से पहले, यह देखा जाता है कि कुछ न्यायिक अधिकारी और नए अधिकारी जिन्होंने अभी-अभी न्यायिक सेवाओं में शामिल हुए हैं, सामान्य नियम (आपराधिक), 1980 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और नई भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के तहत निहित विभिन्न अनिवार्य प्रक्रियाओं और प्रावधानों से अवगत और परिचित नहीं हैं। इस न्यायालय द्वारा इस निर्णय के पैरा संख्या 26, 27, 28, 29, 30, 33, 46 और 50 में उपरोक्त कानूनों के कुछ प्रमुख चूक और प्रावधानों को दूर करने पर ध्यान दिया गया है।

56. हालांकि, मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रशासनिक पक्ष से विचार के लिए रखा जाए कि क्या इस निर्णय की एक प्रति राज्य के न्यायिक अधिकारियों को उनके ईमेल पते पर भेजी जाए ताकि वे भविष्य में परीक्षणों से निपटते समय उपरोक्त कानून के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने के बाद सावधान रहें और आगे, इस निर्णय की एक प्रति निदेशक, राजस्थान राज्य न्यायिक अकादमी को न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए विचार करने और/या भेजने के लिए, ताकि वे भविष्य में परीक्षण करते समय कानून के इन अनिवार्य प्रावधानों से निपट सकें (यदि उचित समझा जाए)।

(अनूप कुमार धंड), जे

आशु / 1.

अस्वीकरण:- स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय केवल वादियों के अपनी भाषा में लाभ के लिए हैं तथा इनका किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता।

निर्णय का अंग्रेजी संस्करण सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए प्रामाणिक होगा और इसे लागू करने में प्राथमिकता दी जाएगी।

